वर्ष ६, अंक १०

श्रीकृष्णाय नमः

अगस्त

श्रावण १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		२७७
२.	पुराण गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		२७८
३.	साधन-साहाय [ले० श्रीकृष्ण पन्त नैनीताल		२८२
४.	योग-साधन [ले श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		२८६
५.	कर्तव्य परायणता (कविता) [रचयित्री श्रीमती ब्रज कुमारी 'प्रभाकर' (आश्रम) ...		२६४
६.	मनुष्य के विचारने योग्य		२६४
७.	कर्म मीमांसा [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम		३०१
८.	ईश्वर से प्रार्थना		३०३
९.	भजन		३०४

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनुवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों को प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ९ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण, ता० १ अगस्त, १९३५ | अंक १० पूर्ण संख्या १०६

वेदोपदेश

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रयंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः॥

धनदाता अग्नि जंगम धनका भाग हमें दान करें। धनद अग्नि स्थावर धनका अंश हमें दें। धनद अग्नि हमें वीरों से युक्त अन्न दान करें। धनद अग्नि हमें दीर्घ आयु दान करें।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे विभाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

विशुद्ध कर्ता अग्नि, इस प्रकार काष्ठों से वृद्धि प्राप्त कर तुम हमें धन-युक्त अन्न देने के लिये प्रभा प्रकाशित करो, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्नकी पूजा करें।

पुराण गाथा

प्रह्लाद का उपदेश (चालू)

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

प्रल्हाद-हेमित्रो ! श्रुति कहती है कि जिससे यह सब भूत उत्पन्न होते हैं, जिस में जीते हुए रहते हैं और जिसमें अन्त में लय होजाते हैं, वह ब्रह्म है इस ब्रह्म को निर्मल चित्त वाले धीर पुरुष इस जगत् उत्पत्ति, स्थिति और लय में से अन्वय व्यतिरेक करके निकाल लेते हैं यानी जगत् की उत्पत्ति आदि में ब्रह्म का सर्वदा अन्वय रहता है, प्रलय में उत्पत्ति और स्थिति का अभाव यानी व्यतिरेक हो जाता है, स्थिति में उत्पत्ति में स्थिति और प्रलय का व्यतिरेक हो जाता है और स्थिति में उत्पत्ति और प्रलय का व्यतिरेक हो जाता है, इस प्रकार जगत की उत्पत्ति आदि का तो परस्पर व्यतिरेक होजाता है यानी प्रलय में उत्पत्ति और स्थिति नहीं होती, उत्पत्ति में स्थिति और प्रलय नहीं होती और स्थिति में उत्पत्ति और प्रलय नहीं होती, इसलिये इन तीनों का तो एक दूसरे से व्यतिरेक है और चेतन, अनुभव स्वरूप ब्रह्म यानी आत्मा का सदा अन्वय है, इसलिये जैसे घर की उत्पत्ति, स्थिति और लय में पृथिवी का अन्वय होने से पृथिवी सत्य है, और घर मिथ्या है, अथवा जैसे भूषण की उत्पत्ति, स्थिति और नाश में सुवर्ण का अन्वय होने से सुवर्ण सत्य है, और भूषण मिथ्या है, इसी प्रकार अन्वय व्यतिरेक करके धीर पुरुष ब्रह्म को जगत् से भिन्न करके जान लेते हैं।

हे मित्रो ! जैसे जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तीन अवस्थायें हैं; इसी प्रकार इस देह की जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थायें हैं। जैसे जगत् की उत्पत्ति आदि का साक्षी एक ब्रह्म सत्य है, और जगत् मिथ्या है इसी प्रकार देह की जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं का साक्षी एक आत्मा सत्य है और देह मिथ्या है। जो जगत् का अध्यक्ष परम पुरुष है, वह ही देह का अध्यक्ष परम पुरुष है, देह के संबंध से अध्यक्ष परम पुरुष का नाम आत्मा है और जगत् के संबंध से उसी का नाम ब्रह्म है, इसलिये आत्मा और ब्रह्म एक हैं। श्रुति कहती है, कि यह आत्मा ब्रह्म है, इस आत्मा ब्रह्म के साक्षी, अच्युत, स्वयंज्योति, महाविष्णु, सदा शिव, चित्, सच्चित् आदि अनेक नाम वेदवेत्ताओं ने कहे हैं। यह ब्रह्म आत्मा ही सत्य है इसके सिवाय बुद्धि के और कि । के भेद से जितना जगत् भासता है वह मरुमरीचिका के समान मिथ्या है, विवेकियों को यह जगत् भासता है और अविवेकियों को जैसे रस्सी में रस्सी के अविवेक से सर्प भासता है इसी ब्रह्म के अविवेक से जगत् भासता

है, जो भाग्यवान् अधिकारी इस ब्रह्म अपने आत्मा रूप से जानता है, वह सर्वभूतों को अपने आत्मा मे और अपने आत्मा को सब भूतों में देखता है, वह अभेददर्शी सबमें एक अपने आत्मा विष्णु भगवान् को देखने से सुखी रहता है, और जो इस ब्रह्म को अपने आत्मा से भिन्न जानता है, वह भेद दर्शी जैसे स्वप्न के पदार्थ मिथ्या होने पर भी स्वप्न द्रष्टा पुरुष दुःख पाता है, इसी प्रकार जगत् मिथ्या होने पर भी दुःख ही पाता है। जैसे जागे बिना मिथ्या स्वप्न की निवृत्ति नहीं होती, इसी प्रकार ब्रह्मात्म तत्त्व में जागे बिना इस मिथ्या जगत् की निवृत्ति नहीं होती, इसलिये हे मित्रो ! तुमको त्रिगुणात्मक कर्मों के बीज का नाश करने वाला योग करना चाहिये, इस योग से ही बुद्धि की जाग्रत् आदि अवस्थाओं के प्रवाह की निवृत्ति होती है और बुद्धि की जाग्रत् आदि अवस्थाओं के प्रवाह के निवृत्त होने पर ही त्रिगुणात्मक जगत् की निवृत्ति और परमानन्द स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति होती है।

हे मित्रो ! यहां तक मैंने तुमसे ज्ञान की रीति बताई अब मैं तुमसे ज्ञान का साधन रूप जो धर्म का तत्त्व है, उसको कहता हूं। जिन धर्मों से अथवा जिन धर्मों के अनुष्ठान करने से भगवान् श्री नारायण में प्रेम हो, वेही धर्म हैं। भाव यह है कि जो कुछ क्रिया करी जाय, जो कुछ खाया जाय, जो कुछ हवन किया जाय, जो कुछ दान दिया जाय और जो कुछ तप किया जाय, वह सब भगवत् की प्रीति के लिये किया जाय, यह ही हजारों उपायों में से भगवत्प्राप्ति का मुख्य उपाय है। यहां तक मैंने तुमसे भक्ति के बहिरंग साधन कहे, अंतरंग धर्मों को कहता हूं, भक्ति के उपदेष्टा गुरु की भक्तिसे शुश्रूषा करे, तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण करदे, साधु भक्तों का संग करे, ईश्वर का आराधन करे, ईश्वरावतारों की कथाओं में श्रद्धा करे, उनके गुणों का और कर्मों का कीर्तन करे, भगवान् के चरण कमलों का ध्यान करे, भगवान की मूर्तियों का इक्षण यानी दर्शन और पूजन करे। भगवान् ईश्वर हरि, सर्व भूतों में हैं, इसलिये सर्वभूतों के श्रेष्ठ की ईश्वर से प्रार्थना करे ! ऐसा करने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर शत्रु जीत लिये जाते हैं, मन सहित पांचों इन्द्रियां वश में हो जाती हैं और वासुदेव भगवान् में प्रीती होती हैं।

हे मित्रो ! जब मनुष्य भगवान् के वात्सल्य आदि गुणों को, दैत्यों के मारने आदि पराक्रमों को और गोवर्धन उठाना आदि लीलाओं को सुनता है, तो उसके शरीर में हर्ष पुलकावली हो आती है, आंखों में से अश्रु गिरने लगते है और वाणी गद्गद हो जाती है, तब वह गला फाड़कर ऊंचे स्वर से गाता है, रोता है और नृत्य करने लगता है और जैसे उसके ऊपर भूत सवार हो, इस प्रकार कभी हंसता है, कभी डकराता है, कभी ध्यान करता है, कभी लोगों को वन्दना करना, बारम्बार श्वास लेता है और भगवान् में बुद्धि लगाकर हरे, जगत्पते, नारायण' इत्यादि लज्जा रहित होकर पुकारता है, ऐसी भावना करने से उसके मन और शरीर जल जाते हैं, मन और शरीर ही नही, मन और शरीर की वसानायें और वासनाओं का बीज अज्ञान भी जलजाता है, पश्चात् सब बंधनों से मुक्त हो जाता है और भक्ति के प्रयोग से वह अधोक्षज भगवान् को ही प्राप्त होजाता है।

हे मित्रो ! अधोक्षज भगवान् को प्राप्त होने पर क्या होता है, उसको सुनो, भगवान् सुखस्वरूप हैं, सबके आत्मा हैं, आत्मा होने से प्यारे से भी प्यारे हैं, पावन से भी पावन हैं, शरीर, इन्द्रिय और मन से परे हैं, उन सबके नियन्ता हैं। जब भाग्य-

वान् अधिकारी सुख स्वरूप, परम प्यारे, पावन से भी पावन केशव भगवान् का मन से स्पर्श करता है, तब उसके मनके रागद्वेष, काम क्रोध, मानापमान आदि जितने द्वन्द्व हैं, जिनके कारण से मनुष्य को संसार चक्र की प्राप्ति होती है, वे सब छूटजाते हैं और वह नित्य मुक्त स्वरूप ब्रह्म में लय हो जाता है, इसी को विद्वान मोक्ष कहते हैं, ऐसा पुरुष जब तक जीता है, तब तक ब्रह्म रूप सुख का अनुभव करने से कभी दीन, दुःखी नहीं होता, सर्वदा, सर्वत्र निर्मोह, निःशोक, निर्भय और निश्चिन्त रहता है, उसको जैसा सुख होता है, वैसा सुख इन्द्रादि देवों को तो क्या, परमेष्ठी ब्रह्मा को भी नहीं होता, इस लिये हे मित्रो ! ईश्वर का भजन करो, ईश्वर कहीं दूर नहीं है, तुम्हारे हृदय में ही है, इसी ईश्वर का हृदय में भजन करो, भजन करने से वह तुम्हारे हृदय में ही प्रकाश हो जायगा और पीछे तुम्हे सर्वत्र सर्वदा जागते सोते दिखायी देगा।

हे असुर बालको ! जैसा मैंने तुमसे ऊपर कहा, इसी प्रकार नारद जी ने मुझसे कहा है कि जैसे घरमें आकाश स्थित है, इसी प्रकार अपने हृदय में हरि स्थित हैं, अपने आत्मा सबके सखा, हृदय में विराजमान भगवान् की भक्ति करने में अति प्रयास नहीं है और विषय तो सामान्य रूप सूकर कूकर आदि योनियों में भी प्राप्त होते हैं, उनके उपपादन करने से क्या लाभ है ? कुछ लाभ नहीं है। भगवान की भक्ति तो मनुष्य शरीर में ही होती है और हो सकती है अन्य शरीर में नहीं हो सकती, इसलिये विषय भोगों से मुख मोड़कर, हृदयेश में चित्त जोड़कर हरि की भक्ति करना ही हमारा, तुम्हारा और सबका कर्तव्य है। धन, स्त्री, पशु, पुत्रादि, धन भूमि, हाथी, घोड़े, ऐश्वर्य, ये सब भोग आपही क्षणभंगुर है, देखते २ नष्ट होजाते हैं, तो ये चल पदार्थ मनुष्य का क्या भला करसके हैं। कुछ भला नहीं करसके ! जैसे यहां के पदार्थ नश्वर हैं, इसी प्रकार कृत आदि से प्राप्त किये हुए चन्द्रलोक आदि लोक भी क्षय होने वाले, अतिशय दोष वाले हैं और रागद्वेष से युक्त होने से निर्मल नहीं हैं, इसलिये जिसमें किसी प्रकार दूषण सुनने में नहीं आया, ऐसे ईश्वर का परम भक्ति से भजन करो, ईश्वर की भक्ति करने से तुम को अपने आत्मा, निर्दोष, शुद्ध, परम पावन ईश्व की प्राप्ति होगी और ईश्वर की प्राप्ति होने पर तुम समस्त द्वन्द्वों से रहित निर्द्वन्द्व हो जाओगे।

हे मित्रो ! यहां पर जिस २ संकल्प से जो कर्म करता है, उसका फल अवश्य उलटा ही होता है। देखो, प्रथम तो इच्छा करने में ही दुःख होता है, फिर क्रिया करने में कष्ट होता है। इच्छा में दुःख और अनिच्छा में सुख सबके अनुभव से सिद्ध है, इसी प्रकार क्रिया करने में कष्ट और क्रिया न करने में सुख, यह भी सबको प्रत्यक्ष है। इच्छा और क्रिया करने से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं, वे इष्ट नष्ट होते हैं, इष्ट नष्ट पदार्थों से मनुष्य को कैसे सुख हो सका है। कभी नहीं हो सका ! हे मित्रो ! जिस देह से भोग भोगे जाते हैं, वह देह तो पानी का बबूला है, एक क्षण का भी उसका भरोसा नहीं है किसी ने सच कहा है कि पांच भूतों के बने हुए पिंजरे में पवन पक्षी बन्द है, उसके बन्द रहने का आश्चर्य है निकलने का आश्चर्य नहीं है। ऐसे देहसे भोगकर कौन सुखी हो सका है। कोई सुखी नहीं हो सका। इस नश्वर देह से तो जो कोई अनश्वर ईश्वर को प्राप्त करलेता है, वह ही सच्चा नर है, वह ही धीर वीर है और वह ही चतुर है, शेष तो नाम मात्र के नर हैं, धीर वीर भी नहीं है किंतु कायर और कृपण हैं, चतुर भी

नहीं है, दो पैर बिना सींग पूंछ के पशु हैं यानी शुद्ध पशु भी नहीं हैं, पशुओं से भी गये बीते हैं।

हे मित्रो ! आत्मा नित्य आनन्द का समुद्र होने से स्वयं ही पुरुषार्थ रूप है, ऐसे आत्मा का इस नश्वर देह से क्या लाभ है। पुत्र, दारा, धाम धनादिक, राज्य, कोश, गज, मंत्री, मृत्यु, कुटुम्बी ये सब जो देह से भिन्न हैं, इन तुच्छ, अनर्थ रूप अर्थ के समान प्रतीत होने वाले पदार्थों से तो आनन्द स्वरूप का लाभ हो ही क्या सका है। नहीं हो सका ! हे असुर बालको ! तुम ही बताओ कि गर्भ से लेकर मरण पर्यन्त क्लेश देने वाले कर्मों से देह प्यारी का कितना स्वार्थ है ? कुछ भी स्वार्थ नहीं है, क्योंकि जिस देह से कर्मों का भोग होता है, उस देह का ही क्षण भरका भरोसा नहीं है। हे मित्रो यदि तुम इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में अबके किये हुए कर्मों का फल भोगोगे, तो ऐसा नहीं है, यह देहधारी कर्मों से देह को और देह से कर्मों का आरंभ जो करता है, वह आत्मा के अविवेक से करता है, इसलिये कर्मों से देह और देह से कर्म आरंभ करना पिसे हुए को पीसना है, इसलिये यह पुरुषार्थ नहीं है, किंतु पुरुष का अनर्थ है, इसलिये धर्म, अर्थ और काम जिसके आधीन हैं उस निश्चेष्ट हरि ईश्वर आत्मा को निश्चेष्ट होकर भजो ! आत्मा, हरि, ईश्वर सब प्राणियों का प्यारा है, वह ही अपने बनाये हुए महदादि भूतों के द्वारा जीव संज्ञा को प्राप्त होगया है यानी अंतर्यामी नाम वाला होगया है। देव, असुर, मनुष्य यक्ष अथवा गंधर्वों में से जो कोई मुकुन्द भगवान् के चरणों को भजता है, वह मेरे समान ही स्वस्तिमान् यानी सुखी और शांत होजाता है, इसलिये यह न समझना चाहिये कि हमको भक्ति अथवा ज्ञान में अधिकार नहीं है। जो हरि को भजता है, वह हरि का होजाता है, इसमें किंचित् भी संशय नहीं है।

हे असुर बालको ! मुकुन्द भगवान् के प्रसन्न करने के लिये द्विजत्व, देवत्व अथवा ऋषित्व की आवश्यकता नहीं है और न वृत्त और न बहुत जानने की आवश्यकता है। दान से, तपसे, यजन से, शौच से और व्रतों से हरि इतनी जल्दी प्रसन्न नहीं होते, जितनी जल्दी भक्ति से प्रसन्न होते हैं। हरि प्राप्ति के लिये एक निर्मल भक्ति ही पर्याप्त है, भक्ति के सिवाय अन्य सब विडम्बन हैं यानी नकल है। इसलिये हे दानवो ! हरि भगवान् में भक्ति करो और सर्वत्र सब भूतों के आत्मा ईश्वर में सबको और सबमें ईश्वर को देखो ! दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियां, शूद्र, व्रजके रहने वाले, पक्षी, मृग आदि पापी जीव भी अच्युतता को यानी अमृतता को प्राप्त हो चुके हैं, तब तुम्हारे प्राप्त होने में संदेह ही क्या है ? कुछ भी संदेह नहीं है, अच्युत को भजने से तुमभी अमरत्व को प्राप्त होगे !

हे मित्रो ! इसलोक में पुरुष का परम स्वार्थ इतना ही है कि गोविन्द में एकांतिक भक्ति करे, यानी सर्वत्र सर्वदा गोविन्द को ही देखे, गोविन्द के सिवाय अन्य कुछ कहीं न देखे, जलमें भगवान को वंदन करते हुए, मछलियों में किलोल करते हुए, मकरों में मुख फाड़े हुए अथवा रेती में लोटते हुए, कमल रूपसे खिलते हुए, तथा कुकुट रूपसे शब्द करते हुए देखे गंगा में जमुना में, कृष्णा में, कावेरी में, नर्मदा में, सिंधु में मुकुन्द भगवान् को ही क्रीड़ा करते हुए देखे ! वृक्षों में पत्र, पुष्प, फल, छाया देते हुए देखे पत्रों की हरियाली में, पुष्पों की गंध में तथा लाल पीले आदि रंगों में, फलों के रसों में उसी सनातन देव का दर्शन करे ! पर्वतों की शिखरों में, गुहाओं में, चट्टानों में सर्वत्र मधुसूदन को ही निहारे। सिंह होकर वह ही गर्जता है, मृग होकर

वह ही छलांग मारता है, मेंढक होकर वह ही टर्र टर्र करता है लोमड़ी होकर वह ही झाड़ी में दुबकता है इसी प्रकार वनके सब वनचरों में नृसिंह भगवान की ही झांकी करे। कोयल होकर वह ही पंचम स्वर से बोलता है, मयूर होकर वही नाचता है, बाल होकर वह ही रूठता है, माता होकर वह ही रूठ बालक को मनाता है, पिता होकर वह ही घुड़कता है, सूर्य, में, चन्द्र में, अग्नि में, नक्षत्रों में, ग्रहों में, तारों में, श्याम सुन्दर ही क्रीड़ा कर रहा है।

दो०–सबमें शाश्वत देवही, लीला करे अपार।
मूढ़ों को मोहित करे, चतुरों का उद्धार॥
चतुरों का उद्धार, होय हरि गुण गाने से।
मूढ़ों का हो पात, भूल हरि के जाने से॥
भोला! हरि मत भूल, घड़ी में क्षण में सबमें।
देख कृष्ण ही नित्य, एक में, दो में सब में॥

साधन-सहाय

[ले० श्रीकृष्ण पन्त नैनीताल]

(शिव पुराणे वायवीय संहितायाम्)

एकैक मंगुलीभिः स्याद्
रेखाभिर्दशधा फलम्।
मालाभिः शत साहस्रं
मालिन्या-नन्त मुच्यते॥

(कुलार्णवतन्त्रे)

१३ साधक के साधना का आसन भूमि में ही प्रशस्त (उत्तम) है। आसन कोमल, प्रीतिकर, वृहत्, समतल और समपृष्ठ होना चाहिये। अपने निजके बिछौने को भी साधन का आसन रूप में व्यवहार करते हुए पाया जाता है।

'आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचि॥

शैवे वायवीय संहितायां।

सुखासनेऽथ शय्यायां
योगं युञ्जीतयोगवित्॥

शैवे धर्म्म संहितायां॥

१४ गुप्त रीति से एक घर में किवाड़ देकर अकेले साधन करना कर्तव्य है। गुरु, गुरु भाई गुरु भगिनी अथवा सम साधक के सहित एक घरमें रहकर भी साधन कर सकते हैं।

अन्धकार में साधन करना अच्छा है। घर में गुग्गुल का धूप देकर साधना में बैठा जाय तो अच्छा होगा।

१५ अपने निजके कपड़े, अंगोछा और बिछौना दूसरे को व्यवहार नहीं करने देना चाहिये। एवं दूसरे के आप भी व्यवहार नहीं करने चाहियें।

१६ एक बेर पेट भर के कभी नहीं खाना

चाहिये । थोड़ा थोड़ा खाना अनेक वार खाना चाहिये ।

हितं मितञ्च भोक्तव्यं
स्तोकं स्तोकमनेकधा ।

वराहे पनिषद् ।

हितकर और परिमित खाद्य अल्प अल्प करके अनेक वार खाना चाहिये ।

नैकवारं समश्नीयात्
नाहृद्यं पूतिगन्धियुक् ।

(गन्धर्वतन्त्र)

एक ही वार नहीं खाना चाहिये, एवं अतृप्तिकर और गला सड़ा गन्ध युक्त नहीं खाना चाहिये ।

क्षुधा से कष्ट पाकर कभी साधन नहीं करना चाहिये । शरीर को कष्ट देकर धर्म्म लाभ के उद्देश्य से 'उपवास' नहीं करना चाहिये । पुनः जितना मिले उतना ही खालेना विधान से केवल खाने में ही व्यस्त नहीं रहना चाहिये । ध्यान रखना चाहिये कि अति भोजन अतीव गर्हित है । एक मिताहार नियम पालन करने से ब्रह्मचर्य्यादि समस्त यमादि की रक्षा होती है ।

'मिताहारो यमश्चैकः"

योगतत्त्वोपनिषद् ।

और अधिक आहार वा अनाहार से योग लाभ नहीं होता है ।

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति
नचैकान्त मनश्नतः। (श्रीगीता

किसी के अनुरोध से असमय में अथवा क्षुधा न रहने पर नहीं खाना चाहिये । रात्रि में ठण्डा दूध विषवत् परित्याग करना चाहिये ।

अन्न को क्षुधा व्याधि की औषध, समझ कर खाना चाहिये ।

'औषधवत् अशनं प्राश्नीयात्' ।

(संन्यासोपनिषद्)

क्षुधाहि सर्व्व रोगाणां
व्याधि श्रेष्ठतम स्मृतः ।
स चान्नौषध लेपेन
नश्यतीह न संशयः ॥

(शैवे धर्म्म संहितायां)

समस्त रोगों में क्षुधा ही श्रेष्ठतम व्याधि है । अन्नरूप औषध से इसका नाश होता है ।

ध्यान में रहे–अभक्ष्य न खाने से मन विशुद्ध होता है, शुद्ध आहार से मन अपने आपही शुद्ध होता है । मन शुद्ध होने पर क्रमात् ज्ञानोदय होताहै और संशय नाश होता है ।

अभक्ष्यस्य निवृत्या तु
विशुद्धं हृदयं भवेत् ।
आहार शुद्धौ चित्तस्य
विशुद्धि र्भवति स्वतः ॥
चित्त शुद्धौ क्रमाज्ज्ञानं
त्रुट्यन्ते ग्रन्थयः स्फुटम् ।

(पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्)

चतुर्व्विधस्य चान्नस्य रसस्त्वेधा विभज्यते
तत्र सारतमो लिङ्गदेहस्य परिपोषकः ॥

(शिवसंहिता)

अर्थात् भुक्त अन्न के सूक्ष्मतम अंशसे मन पुष्ट होता है अतएव, शुद्ध अन्न ग्रहण करने से मन शुद्ध होता है ।

छान्दोग्य श्रुति के षष्ठ अध्याय में कहा हुआ है:-

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते।
तस्य यः स्थविष्ठो धातुः
तत् पुरीषं भवति ।
यो मध्यमः, तत् मांसम्।
योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥

१७ साधन करते करते अपने आपही आहार का परिमाण कम होता आवे तो उसे शुभ लक्षण जानना चाहिये। इसमें किसी प्रकार की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। इस अवस्था में किसी की भी बातों में आकर साधन नहीं छोड़ना चाहिये। अथवा अधिक आहारादि करके स्थूल होने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

१८ साधना में अग्रसर होते होते अपने आपही सुयोग सुविधा आपही समझ सकोगे। साधना में अवस्था परिवर्तन के साथ नियम समूह भी परिवर्तन हो सकते हैं।

१९ गुरु के आचरण की कभी भी आलोचना नहीं करनी चाहिये। कारण गुरुदत्त साधन पथके सहित ही तुम्हारा सम्पर्क है। उसके आचरण से नहीं है। अधिकन्तु, उसकी अवस्था में उसके लिये आचरण तुम्हारी अवस्था में तुम्हारे पक्ष में सम्भव नहीं है। उक्तः-

न चैवास्याऽनुकुर्वन्ति
गति भाषित चेष्टितम्।

(मनु संहिता)

गुरु के गति (चाल) की बातों की वा कर्मों की प्रणाली का अनुकरण नहीं करना चाहिये।

२० किसी विषय में सन्देह उपस्थित होवे तो गुरुके निकट जाकर प्रकाश करके जान लेना चाहिये यदि गुरु सानिध्य में न हों तो पत्र द्वारा ज्ञातव्य विषय जानलो। किसी के भी साधना के अंगको अनुकरण न करने लगो।

२१ गुरुके निकट भिन्न सभी के समीप साधन पन्था और दर्शनादि गुप्त रखना चाहिये, गुरुभिन्न दूसरे किसी के निकट दर्शनादि प्रकाश करने से रोग, शोक दुःखादि विघ्नों में पड़ना होता है। एवं साधन शक्ति नष्ट होजाती है।

स्व शास्त्रोक्तं रहस्याद्यं न
वदेत् यस्य कस्यचित्।
यदि कुर्यात् स समयात्
च्युत एव न संशयः ॥

(कुलार्णवतन्त्रे)

साधक जिस शास्त्र के अनुसार चलता है उसके रहस्यादि जिस किसी से नहीं कहने चाहियें कहने पर समय (साधन सङ्केत) निश्चय ही खोना होता है।

योगी योगात् भवेत् मोक्षो
मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ।
न प्रकाश्यमतो योगं
भुक्ति मुक्ति फलाय च ॥

(रुद्रयामले)

योग द्वारा मुक्ति एवं अस्खलित मन्त्र सिद्धि होती है। अतएव भोग औरमोक्ष लाभ करने के निमित्त योग पन्था को प्रकाश नहीं करना चाहिये।

एतत् प्रकाशनं यच्च
आयुःक्षयकरं स्मृतम्।

साधकस्य विनाशस्तु तस्मात्
नैतत् प्रकाशयेत् ॥

(गन्धर्वतन्त्रे)

दर्शनादि प्रकाश करने से आयु क्षय होती है एवं साधक का साधन नाश होता है। इसलिये उसे प्रकाश नहीं करना चाहिये।

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं
मन्त्रमैथुनभेषजम् ।
तपोदानापमानञ्च नव
गोप्यानि यत्नतः ॥

(दक्षसंहिता)

अपनी आयु, धनका परिमाण, अपने घरके दोष, मन्त्र, मैथुन, औषध, तपस्या, दान और अपमान इन नौ को गुप्त रखना चाहिये। यदि कोई साधन रहस्य जानना चाहे तो उससे इतना ही कह देना चाहिये कि "श्री गुरुदेव के निर्देशानुसार जप करता हूं"।

२२ "गुरुदेव का आदेश पालन करता हूं केवल यह भाव लेकर और कोई कामना न करके साधना करनी चाहिये। किसी प्रकार के ऐश्वर्य या शक्ति लाभ की ओर मन नहीं लगाना चाहिये। स्वतः कोई शक्ति लाभ होने पर उसको गुप्त रखना चाहिये। उसको महाविघ्न समझकर उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। उससे परिणाम में अक्षय परम ऐश्वर्य लाभ करके धन्य और कृतार्थ हो सकते हो।

'अकामानां पदं मोक्षम्

(महानिर्वाणतन्त्रे)

जो कामना न करके साधना करते हैं उनका मोक्ष होता है।

'अकाममानस्य च सर्वकामः

(स्कन्द पुराणे)

निष्काम साधक की सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

'गता गतं कामकामा लभन्ते'। (गीता)

जो सकाम हैं वे जन्म मृत्यु भोग करते हैं।

'अणिमाद्यष्टैश्वर्याशासिद्धसंकल्पो बद्धः

(निरालम्बोपनिषद्)

अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य लाभ की इच्छा बन्धन का कारण है।

'यस्तु मूढोऽल्प बुद्धिर्वा सिद्धि
जालानि वाञ्छति ।

(अन्नपूर्णोपनिषद्)

जो मूढ वा अल्पबुद्धि है, वही सिद्धि समूह की वाञ्छा करता है।

'मोक्षस्य बहवः शास्त्रे
प्रोच्यन्ते प्रतिबन्धकाः ।
अणिमादीच्छया तुल्यः
प्रतिबन्धो न कञ्चन ॥
यस्याणिमादि सिद्धीच्छा
लेशमात्रापि वर्त्तते ।
कल्प कोटयापि तस्यात्मज्ञान
सिद्धिर्न सेत्स्यति ॥

(तत्वसारायणे, रामगीता)

शास्त्र में मोक्ष के अनेक बन्धक वर्णित हैं, किन्तु अणिमादि सिद्धि की इच्छा के समान प्रतिबन्धक कोई नहीं है। जिसकी लेशमात्र भी अणिमादि सिद्धि इच्छा है, उसको कोटि कल्प में भी ज्ञान सिद्धि नहीं हो सकती है।

सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा

दृष्ट्वा परित्यजेत्" ।

(ब्रह्माण्ड पुराणे)

सिद्धि समूह के विघ्न देख देख कर परित्याग करने चाहियें ।

'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।
तदु वैराग्यादपि दोषबीज कैवल्यम् ॥'

(पातञ्जल दर्शने विभूति वर्णने)

विभूति समूह समाधि पक्ष में विघ्न हैं। किन्तु ये संसार के प्रयोजन सिद्धिलाभ करते हैं, इनसे वैराग्य होने पर दोषों का बीज क्षय होजाता है और कैवल्य मुक्ति लाभ होती है।

२३ बिना पूछे हुए उपयाचक होकर किसी से भी साधन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिये। किसी के पूछने पर भी उपयुक्तविवेचित न होने पर साधन विषय में कोई बात कहना निषिद्ध है।

नापृष्टः कस्यचित् ब्रूयात्
न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी
जड़वत् लोकमाचरेत् ।

(संन्यासोपनिषद्)

कोई न पूछे, अथवा अन्याय भाव से प्रश्न करे, ज्ञानी व्यक्ति किसी से भी कुछ नहीं कहता है। वह ज्ञानी होते हुए भी अज्ञ के सदृश आचरण करता है।

पृष्टःसन् प्रकृतं व्यक्ति
न पृष्टः स्थाणुवत् स्थितः ।

(योगवासिष्ठे उपशमे)

जिज्ञासा करने पर ज्ञानी यथार्थ उत्तर देता है, नहीं तो मूर्ख के सदृश चुप रहता है।

२४. साधन करने में सदा उद्यम शील रहना चाहिये। जो साधन करता है। उसी को सिद्धि लाभ होती है। साधन न करने से कैसे होगी? अतएव उपदेश अनुयायी साधन करना कर्त्तव्य है। जैसा कि:-

क्रियायुक्तस्य सिद्धिस्यादक्रियस्यकथं भवेत् ।
तस्मात् क्रिया विधानेन कर्तव्या योगिपुङ्गवैः

(शिव संहिता)

जो क्रियावान् है उसी को सिद्धि प्राप्त होती है। क्रिया न करने से सिद्धि कैसे मिलेगी? अतएव विधान अनुयायी साधकों को क्रिया करनी चाहिये।

पुरुषार्थादृते पुत्र नेह सम्प्राप्यते शुभम् ।

(योगवाशिष्ठे उपशमे)

पुरुषकार भिन्न संसार में शुभलाभ किसी से नहीं हो सकता है।

गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात् पौरुषादृते ।
उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत् कस्मान्नोद्धरत्यसौ

(योगवाशिष्ठे उपशमे)

शिष्य का निज पुरुषकार न होने पर भी यदि अज्ञशिशु को गुरु उद्धार कर सकता है तो यह साण्ड ऊंट और बैल का उद्धार क्यों नहीं करता है?

योग वासिष्ठ के नि० प्र० उ० ६२ सर्ग में कहा है।

अर्द्धं सज्जनसम्पर्काद्
अविद्यया विनश्यति ।
चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थैश्चतुर्भागः स्वयत्नतः॥

अविद्या का आधा तो सज्जनों के संग सहवास से नाश होता है, चतुर्थांश शास्त्रों की सहायता से एवं परिशिष्ट अपने प्रयत्न से नष्ट होता है। अतएव-उद्यमशील होकर साधना में तत्पर होना चाहिये।

दीक्षा लाभ के पीछे कोई कोई समझते हैं और कहते हैं, "गुरुदेव जो करें उनके ही ऊपर समस्त निर्भर है" किंतु मोह वश (भ्रमसे) वे यह नहीं जानते कि गुरु अथवा ईश्वर साधन तरी के "कर्णधार हैं" दंड वाहक "मांझि" नहीं हैं। तथा

कर्णधारं गुरुं प्राप्यतद्वाक्यं प्लववदुदृढम् ।
अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्

(योगशिखोपनिषद्)

गुरु को कर्णधार रूप, उसके उपदेश को दृढ़नौका रूप, एवं तत्कथित साधन मार्ग को डांड रूप पाकर लोक इस संसार रूप सागर से उत्तीर्ण हो जाते हैं।

२५. गुरु, मन्त्र और देवता को अभिन्न जानकर साधन और सेवा करनी चाहिये, गुरु मन्त्र और देवता एकही हैं। देवता ही गुरु रूप धारण किये हैं।

गुरुरेव हरिः साक्षात्
नान्यदित्यब्रवीत् श्रुतिः ॥

(ब्रह्मविद्योपनिषद्)

गुरु ही साक्षात् हरि है दूसरा नहीं है। यह वेद वचन है।

यथा गुरुस्तथैवेशो
यथैवेशस्तथा गुरुः ।
पूजनीयो महाभक्त्या
न भेदो विद्यतेऽनयोः ॥

(योगशिखोपनिषद्)

जैसा गुरु वैसा ही ईश्वर, जैसा ईश्वर वैसा ही गुरु। उनकी महा भक्ति से पूजा करनी चाहिये, दोनों में भेद नहीं है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(श्री गुरुगीता)

गुरुदेव ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं परं ब्रह्म हैं, अतएव उनको नमस्कार है।

सर्व्वानुग्रह कर्तृत्वाद्
ईश्वरः करुणानिधिः ।
आचार्य्य रूपमास्थाय
दीक्षया मोचयेत् पशून् ॥

(कुलार्णवतन्त्रे)

ईश्वर का सब प्रकार अनुग्रह करने का अधिकार है, इसी कारण वह करुणा वश गुरु रूप धारण करके दीक्षा द्वारा जीव का उद्धार करते हैं।

यथा मन्त्रे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ ।
पश्येदभेदतो मन्त्री एवं भक्ति क्रमो मुने ॥

(गौतमीयतन्त्रे)

मन्त्र, देवता और गुरु में अभेदज्ञान रखना चाहिये। हे मुने ! यही भक्ति क्रम है।

दीक्षाविधावीश्वरो वै कारणं स्थलमुच्यते ।
गुरुः कार्य्य स्थलं चातो गुरुर्ब्रह्म प्रगीयते ॥

(मन्त्रयोग संहिता)

दीक्षा कार्य में ईश्वर कारण स्थल है, एवं गुरु कार्य्य स्थल है। अतएव गुरु को ब्रह्म कहते हैं।

गुरु पूजैव पूजा स्यात्
शिवस्य परमात्मनः ।

(मन्त्र योग संहिता)

गुरु पूजा ही परमात्मा शिव की पूजा है। इष्ट मन्त्र और गुरु मन्त्र एकही हैं इनमें से किसी की भी पूजा की जाय वे ही समान फल देते हैं।

यथा देवस्तथा मन्त्रो यथा
मन्त्रस्तथा गुरुः।
देवमन्त्रगुरूणाञ्च पूजायाः
सदृशं फलम् ॥

(कुलार्णवतन्त्रे)

गुरु सेवा करते समय यह भावना करनी चाहिये कि 'इस गुरु सेवा द्वारा ही मेरे मन्त्र रूप इष्ट पूजा का कार्य हो रहा है।' मन्त्र जप करते समय यह समझना चाहिये कि 'इस मन्त्र जप द्वारा ही मेरे गुरु सेवा और इष्ट पूजा का कार्य्य हो रहा है।' अथ च इष्ट पूजा करते समय यह भाव रहना चाहिये कि 'इस इष्ट पूजा द्वारा ही मैं गुरुसेवा और मन्त्र जप कर रहा हूं।'

२६. देह रहने तक गुरु सेवा करनी चाहिये, अद्वैत ज्ञान होने परभी गुरु के सहित अद्वैत भाव से आचरण नहीं करना चाहिये।

यावच्चोपाधिपर्य्यन्तं तावत् शुश्रूषयेत् गुरुम्

(पैङ्गलोपनिषद्)

जब तक देह रहे, गुरु शुश्रूषा करनी चाहिये।

अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह।

(कुलार्णवतन्त्रे)

सर्व्वदा अद्वैत भावना करनी चाहिये, गुरु के संग अद्वैत भावना नहीं करनी चाहिये।

यावदायुस्त्रयो वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्म्मणा वाचा श्रुतिरेवैष निश्चयः ॥

(श्रीमच्छङ्कराचार्य्य कृत तत्त्वोपदेश)

जब तक आयु रहे, तब तक वेदान्त, गुरु और ईश्वर की मनसा, कर्मणा और वाक्य द्वारा पूजा करते रहना चाहिये। यह वेद वचन है।

भावाद्वैतं सदा कुर्य्यात्
क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु
नाद्वैतं गुरुणा सह ॥

(श्रीमच्छङ्कराचार्य्य कृत सारतत्त्वोपदेश)

मन ही मन सदा अद्वैत भाव का पोषण करना चाहिये किन्तु कार्य्य में अद्वैत भाव नहीं दिखलाना चाहिये। तीनों लोकों में अद्वैत भाव पोषण करना चाहिये, किन्तु गुरुके सहित अद्वैत भाव से आचरण नहीं करना चाहिये। गुरुदेव की पादुका का पूजन करना चाहिये। महाभाग्यवश यदि गुरु उपस्थित होवें तो उनका पादोदक पान करना चाहिये और भोजनोच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। पद एवं अंगुलि तेज के स्थान हैं। सुतरां पादुका में और पादोदक में एवं भोजन शेष प्रसाद में गुरुका तेज संश्लिष्ट रहता है। अतएव पादुका पूजा में और पादोदक पान में एवं प्रसाद ग्रहण करने में गुरुशक्ति शिष्य में सञ्चारित होती है जिससे शिष्य का देह और मन शुद्ध होता है।

अपायात् पाति नियतं
दुःसङ्गात् दुर्निमित्तकात्।
कामितार्थप्रदानाच्च
पादुका परिकीर्तिता ॥

(गौतमीयतन्त्रे)

गुरुकी पादुका आपद् दुःसंग और दुर्निमित्त से साधक की बारम्बार रक्षा करती है, एवं उसकी कामना पूर्ण करती है। इसी कारण पादुका नाम है।

महारोगे महोत्पाते महादोषे महाभये।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ॥

(कुलार्णवतन्त्रे)

योग-साधन

[ले०-श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती

१०७३. उन्नत आत्मा महान पुरुषों के साथ सत्संग रक्खो क्योंकि यह सन्मार्ग पर चलाने वाले हैं सदैव इस बातका ध्यान रक्खो कि तुम्हारे चित्त कारखाने में क्या होरहा ? समस्त नीच कर्मों का परित्याग करदो। श्रेष्ठ और उदार पुरुष बनजाओ। श्रेष्ठता परमात्मा का रूप है और उदारता सत्यका रूप है यदि लोग तुम पर हंसते हैं तो तुम चुप रहो। उत्तर में किसी को बुरा मत कहो। सबको क्षमा करदो। गाली का उत्तर हंसीसे दो। जिज्ञासु के मार्ग में परीक्षाएं और कठिनाइएं उसकी आध्यात्मिक उन्नति को शीघ्रगामी बनाने के लिए ही आया करती हैं जो मनुष्य सब प्रकार की परिस्थिति में रहने के लिए तय्यार रहता है उसकी उन्नति बड़ी शीघ्र होती है। यदि परमात्मा कठिनाइयों में रखता है तो साथ ही कठिनाइयों को सहन करने के लिए शक्ति, सन्तोष और सहन शक्ति भी प्रदान करता है। पछताने और रोने की क्या बात है ? जो कुछ होजावे उसे अच्छा समझो और कहो "तेरी इच्छा पूर्ण हो"।

१०७४. जिस प्रकार सुनार स्वर्ण का मैल निकालने के लिए अपनी धौंकनी से भट्टी को प्रचण्ड करके सोने को गलाता है, इसी प्रकार योगाभ्यासी अपने शरीर और इन्द्रियों के मैल को निकालने के लिए फेफड़ों में प्राण को भरता है और निकालता है।

१०७५. समाधी दो प्रकार की है जड़ समाधी और चैतन्य समाधी। एक हठयोगी खेचरी मुद्रा के अभ्यास से अपने आपको वर्षों तक पृथ्वी के नीचे एक बक्स में बन्द करके रख सकता है। इस समाधी में इन्द्रियातीत ज्ञान नहीं होता। चैतन्य समाधी में पूर्ण ज्ञान रहता है। योगी को दैवी ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१०७६. ओ ! संसार वासनाओं में निमग्न मनुष्यो, अज्ञान निद्रा से जागो। अपनी आंखें खोलो आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए खड़े होजाओ। ब्रह्म निष्ठ गुरु के पास जाओ। निद्रा रहित निद्रा अर्थात् (समाधि) प्राप्त करो ! आत्मा में गोता लगाओ।

१०७७. तुम अपनी गर्दन में काले सांप को हार बना कर पहन सकते हो। समुद्र को फलांग सकते हो रेत में से तेल निकाल सकते हो, रेत की रस्सी बना सकते हो परन्तु चित्त का वश करना इन सब से कठिन है।

१०७८. वायु में उड़ना आसान है, लोहे में से मक्खन निकालना भी आसान है, और शशे के शिर में सींग का निकालना भी सम्भव है परन्तु एक मूर्ख और दुष्टात्मा को सीधे मार्ग पर लाना असम्भव है।

१०७९. जो आदमी देश से ऋषि केश आते हैं वह यहां ठैरना पसन्द नहीं करते और अपने स्थानों

को छोड़ने में इतना कष्ट अनुभव करते हैं जितना मछली पानी से पृथक होने में। एकान्त, अपना शान्ति प्रद और सुन्दर प्रभाव उन्हीं लोगों पर डालता है जो मोक्ष के जिज्ञासु और अधिकारी हैं। संसारी मनुष्य गुबरीले कीड़ों की भान्ति विषय वासना में ही आनन्द अनुभव करते हैं, और उसी में मरजाते हैं।

१०८०. जिसकी परमात्मा में अनन्त भक्ति है और जैसी परमात्मा में है वैसी ही गुरु में है, उस महात्मा के हृदय में उपनिषद् और गीता में कहा हुआ ज्ञान प्रकाशित होता है।

१०८१. इस बात में सबही सहमत हैं कि मनुष्य की समस्त क्रियाएं आनन्द प्राप्ति के लिए हैं इसलिए मनुष्य का सर्वोच्च आदर्श, अनन्त, सनातन अव्यय आनन्द की प्राप्ति होनी चाहिए। यह आनन्द मनुष्य को अपने भीतर अपनी आत्मा में ही मिल सकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को इस अव्यय आनन्द की खोज करनी चाहिए।

१०८२. खिलाड़ियों की अपेक्षा तमाशाई क्रिकेट के खेल का अधिक आनन्द लूटते हैं। खिलाड़ियों का चित्त तो सफलता और असफलता के ध्यान में चिन्तित रहता है। उनका चित्त शान्त नहीं रहता। यदि तुम संसार में एक द्रष्टा की भान्ति रहो और अपने चित्त को सांसारिक कार्यों से पृथक रक्खो और सदैव साक्षी की भान्ति रहो तो तुमको आत्मा का आनन्द प्राप्त हो सकता है। यही आत्मज्ञान है। यदि तुमको इस बातका पूर्ण विश्वास हो जावे कि संसार मिथ्या है तो वासनाओं का तुम्हारे चित्त में उदय ही बन्द होजावे। यदि वासनाओं का नाश होवेगा तो संकल्पों का आपही नाश हो जावेगा। जब मन वासना रहित हो जावेगा तो चित्त में कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होगा, और चित्त की अमन अवस्था होजावेगी यही अवस्था सर्वोच्च शान्ति, आनन्द और ज्ञान की है।

१०८३ सहस्र सार अर्थात् हज़ार कलियों वाला कमल दिमाग में स्थित है और उसे सुख मण्डल कहते हैं। कुण्डलनी इस स्थान पर शिवसे मिलती है। इस स्थान पर योगी पेट भर अमृत का पान करता है।

१०८४. जिस प्रकार लकड़ी को रगड़े बिना अग्नि प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार अभ्यास योग के बिना ज्ञानका दीपक प्रज्वलित नहीं होता सिद्धि साधन से ही प्राप्त हो सकती है।

१०८५. सन्तोष परमात्मा की प्राप्ति में सबसे सरल उपाय है। जिसने स्वार्थ का त्याग कर दिया है, जो उत्साही, अभय, दयालु और विश्वप्रेमी है वही आत्म साक्षात्कार करने के योग्य है।

१०८६. जो कुण्डलनी योग का साधन करना चाहता है उसके लिए सुषमना आदि नाड़ियों का ज्ञान होना आवश्यक है। इस ज्ञान से उन्नति में शीघ्रता होती है।

१०८७. सुषमना जोकि मेरुदण्ड के नीचे स्थित है मुख्य नाड़ी है। जिस प्रकार बिजली का भण्डार डिनोमा में रहता है उसी प्रकार जीवन शक्ति प्राण चक्रों में और सुषमना नाड़ी में भरी रहती है। चक्र को संस्कृत में पद्म कहते हैं। प्राण ही जीवन का आधार है। हठ योगी का प्रथम कार्य नाड़ियों को शुद्ध करना होता है और सुषमना के द्वार को खोलना होता है जोकि सांसारिक पुरुषों में सोया हुआ रहता है।

१०८८. चन्दन का वृक्ष प्रत्येक जङ्गल में नहीं मिलता और इसी प्रकार मोती भी प्रत्येक समुद्र में नहीं मिलते। रत्न प्रत्येक पहाड़ में नहीं मिलते इसी प्रकार सच्चे साधु प्रत्येक स्थान में नहीं मिलते।

उनके लिए तलाश करना ही आवश्यक है।

१०८९. वृक्षों में जीवन है, पशुओं में समझ है, मनुष्यों में ज्ञान है। उच्च आत्माओं में अध्यात्मिक ज्ञान है।

१०९०. संकल्प शक्ति केवल मनुष्यों में है, मनुष्य ही तर्क कर सकता है, विचार कर सकता है और निर्णय कर सकता है, मनुष्य ही तुलना कर सकता है, विरोध कर सकता है। मनुष्य ही कविता कर सकता है और फल भी मनुष्य ही निकाल सकता है। यही कारण है कि मनुष्य ही परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य केवल खाने पीने से प्रयोजन रखता है और अपनी मानसिक शक्तियों का विकाश करके परमात्मा की तरफ अग्रसर होने का प्रयत्न नहीं करता वह केवल पशु ही है। ऐसे मनुष्य के जीवन को धिक्कार है जो संसार की बाह्य वस्तुओं में चित्त लगाता है वह आत्मा का हनन करने वाला है। वह निश्चय आत्मघात करता है।

१०९१. वेदान्त का स्वाध्याय करने वालों को कठोपनिषद् का नित्य पाठ करना चाहिए। उसमें आत्मज्ञान पर नचिकेता और यम का सम्वाद है। इसके ६ अध्याय हैं।

१०९२. वाजस्रवा ऋषि ने विश्वजीत-यज्ञ में अपना समस्त धन दान कर दिया। उसका नचिकेता नामका एक पुत्र था। वाजस्रवाने ऋत्विक को निकम्मी गायें दान करदीं। नचिकेता को अपने पिता का यह दान पसन्द नहीं आया। उसने विचार किया कि उसके पिता को यज्ञ का पूर्ण लाभ नहीं प्राप्त होगा और उसके पिता को इसके फल स्वरूप आनन्द रहित लोकों में जाना पड़ेगा।

१०९३. उसने अपने पिता से पूछा कि पिता मुझे किसको दान दोगे! यह प्रश्न उसने बल पूर्वक तीन बार किया। उसका पिता उसके इस व्यवहार से बहुत नाराज हुआ और उसने कहा कि "तुझे यमराज को दूंगा"।

१०९४. नचिकेता यह सुनकर यमराज के यहां गया। यमराज कहीं गया हुआ था इसलिए वह तीन रात्री उसके द्वारपर भूखा रहा।

१०९५. जब यमराज वापिस आया उसने नचिकेता को कहा "ओ ब्राह्मण! तू मेरे घर में तीन दिन भूखा रहा है। इसलिए तीन वरदान जो तेरी इच्छा हो मांगले, मैं तुझे नमस्कार करता हूं।

नचिकेता ने यमराज से तीन वरदान मांगे।

१. मेरा पिता गौतम चिन्ता से रहित और शान्त होजावे, मेरे पर उसे क्रोध न रहे और प्रसन्नता से वह मेरा स्वागत करे।

२. यमराज! आप उस अग्नि को जानते हैं जिसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं। कृपा करके मेरे पर वह ज्ञान प्रकट करो जिसके द्वारा स्वर्ग वासी अमरत्व को प्राप्त करते हैं।

३. इस सन्देह को दूर करो कि मृत्यु के पश्चात् जीव का क्या होता है? कोई कहता है इसका अस्तित्व रहता है, कोई कहता है नहीं रहता।

१०९६. यमने पहले दो वरदान प्रेम से दिए परन्तु तीसरे के देने से इनकार किया। उसने कहा "यह बड़ा सूक्ष्म प्रश्न है, इसके लिए देवता भी सन्दिग्ध हैं। इसका जानना आसान नहीं है। ओ नचिकेता! कुछ और वरदान मांगो। इस प्रश्न को छोड़दो इसके लिए आग्रह मत करो"।

१०९७. यमराज नचिकेता की जिज्ञासा को जानना चाहता था और भी मालूम करना चाहता था कि इसको पूर्ण वैराग और विवेक है या नहीं। उसने उसको हाथी घोड़े, रथ, सम्पत्ति, राज्य, परिवार और अच्छे २ लोकों का लालच दिया।

१०६८. नचिकेता अपने विचार पर दृढ रहा और उसने उत्तर दिया "अय प्रभु ! यह सब नाशमान पदार्थ हैं। इन भोगों से इन्द्रियों की शक्ति और ज्ञान का ह्रास होता है। बहुत आयु भी छोटी ही होती है। काल उस दिव्य ज्योति के समक्ष क्या है ? यह अप्सराएं और भोग केवल हानि करने वाले हैं क्योंकि इनसे नेकी, शक्ति, बुद्धि और कीर्ति का नाश होता है। इनसे मनुष्य नास्तिक बनजाता है। इन रथों को, रत्नों को और अप्सराओं को आप अपने पास रखिए। मुझे तो केवल वह वरदान चाहिए जिससे आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो और अमरत्व का लाभ हो।

१०६९. यमराज ने नचिकेता की परीक्षा करली और उसको सच्चा जिज्ञासु पाकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और उसे ब्रह्म-विद्या अर्थात् आत्म ज्ञान की शिक्षा दी।

११००. नचिकेता ने यमराज से आत्मा के ज्ञान का रहस्य सुना, उसपर विचार किया, उसका मनन और निधिध्यासन क्रिया और उसे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हुई।

११०१. विश्व जाग्रत अवस्था का अभिमानी देवता है, तेजस स्वप्न अवस्था का और प्रज्ञा सुसुप्ति अवस्था का यह पिण्ड में है।

११०२. ब्रह्माण्ड में विराट समस्त स्थूल शरीरों का, हिरण्य गर्भ सूक्ष्म जगतका, और ईश्वर समस्त कारण शरीरो का अभिमानी देवता है। यह वेदान्त शास्त्रों का विचार है।

११०३. जिसमें दो वस्तुएं रहती हैं एक प्रज्ञान और दूसरा मूल-अज्ञान। वहां मन नहीं रहता। मन मूल, अज्ञान अर्थात् आनन्दमय कोष में समाजाता है। प्रज्ञान को निद्रा के आनन्द का ज्ञान रहता है। वह निद्रा के समय अपने आनन्द को वर्णन नहीं कर सकता यद्यपि वह उसका उपभोग करता है। इसको ऐसे समझना चाहिए कि जब मनुष्य पानी में गोता लगाकर पानी के नीचे किसी पदार्थ को हाथ में पकड़लेता है परन्तु वह बता नहीं सकता कि मैंने अमुक पदार्थ पकड़ा हुआ है।

११०४. समस्त अवतार ब्रह्मा, विष्णु या शिवसे उत्पन्न हुए हैं वह ईश्वर से नहीं हुए !

११०५. ज्ञानी जो कि ज्ञान की सातवीं या छठी भूमिका में पहुंच गया है काम नहीं कर सकता वह सदैव ब्रह्म में निमग्न रहता है। उसको काम करने के लिए चौथी या पांचवी भुमिका में आना पड़ता है। पुराने विचारों का मत है।

११०६. नवीन विचार वालों का मत यह है कि ज्ञानी तो अपने स्वरूप में भी स्थित रह सकता है और संसार में काम भी कर सकता है, उसके लिए नीचे की भूमिकाओं में उतरना जरूरी नहीं है। कव्वा अपनी आंख को जिस प्रकार दाँई या बाँई तरफ करलेता हैं इसी प्रकार ज्ञानी भी करलेता है।

११०७. भक्ति योग में तीन बातें होती हैं। प्रेमी प्रेम पात्र और प्रेम। जब प्रेमी अपने आपको प्रेम पात्र के सम समझने लगता है फिर भक्ति का अन्त होजाता है। ज्ञानका उदय होजाता है। द्वैत चला जाता है, फिर कोन किससे प्रेम करे ?

११०८. ईश्वर निर्गुण ब्रह्म में स्थिर रहकर और ब्रह्म ज्ञान स्थिर रखकर अपना काम कर सकता है। उसका माया पर अधिकार होता है। अवतार भी अपने स्वरूप में स्थित रहकर काम कर सकता है। परन्तु ज्ञानी जो कि सातवीं भूमिका में चला गया है काम नहीं कर सकता।

११०९. जिस प्रकार भोजन के करने से तुष्टी और पुष्टी होती है उसी प्रकार भक्ति से वैराग और ज्ञान होता है। भक्ति मार्ग में पांच बातें जरूरी हैं।

(१) भक्ति निष्काम होनी चाहिए (२) भक्ति अव्यभिचारिणी होनी चाहिए (३) निरन्तर रहनी चाहिए, (४) भक्त को सदाचारी होना आवश्यक है (५) भक्ति के जिज्ञासु को गम्भीर, सहन वाला और अभ्यासी होना चाहिए।

१११०. यदि तुमको परमात्मा के प्रेम और भक्ति के अतिरिक्त किसी बातकी इच्छा नहीं है तो इसका नाम निष्काम भक्ति, अहैतुक भक्ति, रागात्मिका भक्ति और मुख्य भक्ति है।

१११९. यदि तुम धन, पुत्र या बीमारी के निवारण के लिए परमात्मा की भक्ति करते हो तो यह सकाम भक्ति हैतुक भक्ति और गौण भक्ति कहलाती है।

१११२. साधक के रास्ते में रुकावटें, लालच और भय आते हैं इसलिए उसको बड़ा सावधान रहना चाहिए। साधन में गलतियां भी होंगी। जिस ने उस राह पर चलकर सिद्धि प्राप्त करली है उसे गुरु की आवश्यकता है।

१११३. अव्यभिचारिणी भक्ति क्या है? यह एक ही के प्रेम का नाम है। भक्त केवल भगवान् का ही प्रेमी हो, उसके प्रेम के बटाने वाला दूसरा कोई न हो। भक्त का चित्त सदैव भगवान् चरण कमलों में लगा रहे। मन, चित्त और आत्मा सब भगवान के अर्पण होने चाहिएं। यह अव्यभिचारिणी भक्ति है।

१११४. यदि भक्त दिन में कुछ समय तो भगवान का ध्यान करता है, और शेष समय में अपनी स्त्री, पुत्र और धन सम्पत्ति की चिन्ता करता है तो यह व्यभिचारिणी भक्ति है इस भक्ति में प्रेम बढ गया। चित्त का कुछ भागको मिला शेष कुटम्ब और सम्पत्ति की खोज में लगा रहा।

१११५. सदाचार के बिना भक्ति का विकाश नहीं होता। जिस प्रकार बीमारी को दूर करने के लिए औषधि और भोजन के संयम की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान और भक्ति सदाचार के आधार पर हो सकती है। भक्ति औषधि है और सदाचर भोजन का संयम है।

१११६. सदाचार किसका नाम है, सत्य भाषण, अहिंसा, मन, वचन, कर्म से किसी के चित्तको नहीं दुखाना, किसी के साथ कटु-भाषण नहीं करना, किसी पर क्रोध न करना, न किसी को अपशब्द कहना और न हीं किसी की निन्दा करना और समस्त भूत प्राणियों में एक परमात्म देवका दर्शन करना।

१११७. यदि तुम किसी की निन्दा करते हो, या किसी के चित्त को दुखाते हो तो निश्चय करके तुम परमात्मा का ही चित्त दुखाते हो।

१११८. ज्ञान क्या है? कपड़े में धागों का देखना पात्रों में मिट्टी, आभूषणों में सोना, कुरसी, किवाड़ आदि में लकड़ी का अनुभव करना ज्ञान है। प्रत्येक प्राणिमात्र मे परमात्मा को देखना और यह समझना कि हमारे चित्त में और सब प्राणियों के दिलमें यह भगवान आप विराजमान है ज्ञान है। जब भक्ति परिपक्व होजाती है, तो ज्ञानका आविर्भाव होजाता है। अनन्य भक्ति का फल ज्ञान है। भक्ति माता है या यूं समझिए भक्ति बीज है और ज्ञान उसका पुत्र है या फल है।

१११९. एक अध्यात्मिक डायरी बनाओ। जब कभी तुमको किसीपर क्रोध आजावे या तुम्हारी वाणी से किसी का चित्त दुःख जावे तो नोट करलो यह बहुत आवश्यक है।

कर्तव्य परायणता

(रचयत्री श्रीमती ब्रजकुमारी 'विदुषी' आश्रम)

रण छोड़ चलें नहिं वीर वरु शत खंड हुये तनु भूमि परे ॥
प्रण तोड़ चलें नहिं धीर वरु बहु कष्ट कसौटी भूमिपरे ॥
क्षण होय विमुख नहिं वीर सति 'ब्रज' वरु दिग्ज भ्रुव दिशि घूमिपरे ॥
क्षण होय प्रकट नहिं गर्व गम्भीर फल चार चरण को चूमिपरे ॥

वीर=स्त्री ।

मनुष्य के विचारने योग्य

अद्भुत ज्ञान की बात

अपने चारों ओर सृष्टि की रचना की बहुतायत को देखकर स्वाभाविक विचार होता है कि इसको किसने और किसलिये बनाया है। सुनने में आया कि इसको परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये बनाया है। जिससे परमेश्वर के महत्व और कारीगरी, विचित्र रचनायें देखकर परमेश्वर का ज्ञान होवे और जगत् से वैराग्य होवे। जिससे केवल परमात्मा के स्वरूप को जीव चिन्तन करता हुवा परमेश्वर को प्राप्त हो जाय। यही इसका मुख्योद्देश्य है परन्तु हमको नाना प्रकार का दुःख, क्लेश, यन्त्रणायें होती हैं और दीखती हैं। तो यही विचार होता है कि परमेश्वर ने इस जगत् को क्यों बनाया जिसमें जीवों को इतना दुःख होता है, न बनाता तो अच्छा होता। क्योंकि जीव भी सुखी रहते और आप भी शान्त मौज में सोता रहता। ऐसे बखेड़े में पड़ना परमात्मा की बुद्धिमानी का काम नहीं है परन्तु हम इससे डरते हुये कहते हैं परमात्मा की महिमा, माया, लीला अपार है जिसको वेदादि, ऋषिमुनि, देवता कोई भी पार नहीं पा सकता है। उसका ज्ञान समुद्र के समान है और हमारी बुद्धि कुल्हिया वत् है। कुल्हिया में सारा समुद्र कैसे भर सकता है ऐसे परमात्मा की रचना और महिमा हम बुद्धि द्वारा कैसे जान सकते हैं।

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"।

परन्तु हम किन्ही किन्हीं शास्त्रों के वचनों से और अपने नित्य के अनुभव से यह निश्चय करते हैं कि बहुतेरे जीवों में विशेषकर मनुष्यों में जन्म से ही दुःखी, दीन नीच, लंगड़े, लूले, अन्धे, अपाहज, रोगी, मन्द बुद्धिवाले, मलिन, कुरूप इत्यादि दूसरी ओर सुखी, समृद्ध, सुडौल, सुन्दर, अच्छी आखों वाले, सर्वाङ्गों से हृष्ट पुष्ट, अच्छी स्मृति, बुद्धि व कुल वाले हैं, राजा हैं, संन्यासी हैं, ब्राह्मण हैं, एक पालकी पर चढ़कर चलता है ये सब विषमतायें कैसे उत्पन्न हुई है। यदि कहो कि पूर्व कर्मों के अनुसार जैसे जैसे जीवने शुभा शुभ कर्म किये हैं यह उनका फल है। जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं, दूसरे जीवों को सुख दिया है, दान पुण्य किया है वे सुखी हैं और जिन्होंने विपरीत किया है वे दुःखी हैं। आगे भी इसी प्रकार से समझना। तो अब प्रश्न होता है कि यदि मनुष्य को अपने पिछले कर्मों का ज्ञान होता कि मैंने पूर्व जन्म में अमुक पाप किया था उसका यह दुःख रूपी फल मुझे मिल रहा है और अमुक पुण्य कर्म किया था जिस का फल मुझे यह सुख मिला है तो कोई भी पाप कर्म न करता, सबके सब पुण्य रत रहते। जब तक कोई अध्यक्ष अपराध करने वाले के चित्त पर अपराध सिद्ध करने का प्रमाण न दे देवे तब तक उसे दण्ड देने का अधिकार नहीं है। इसलिये परमात्मा हम को शुभाशुभ का ज्ञान कराता और पीछे दण्ड और पुरुस्कार देता तो अच्छा होता। एक यवन आचार्य से पूछा गया कि "यह सृष्टि संग्राम रूपा और सुखी दुखी किसने बनाई है" उसने कहा "खुदा तालाने" "उसने किसी को जन्म से सुखी और किसी को दुःखी क्यों बनाया उसके लिये तो सब पुत्रवत् समान हैं?" तो उत्तर मिला कि "उसकी कतारे बनाई हुई हैं इनमें दुःखी चलते रहें इनमें सुखी चलते रहें। वह परस्पर दूसरों को देखकर सुखी दुखी होते रहें। बस यह उसकी मर्जी कुदरत है आगे हम कुछ नहीं जानते।" परमेश्वर के लिये यह कभी ठीक नहीं हो सकता कि किसी को बिना ही कारण के दुखी सुखी बनावे। वह तो पक्षपात रहित है, वह करुणा वरुणा लय है। और अपार दया करने वाला है। ऐसे ही एक बार ईसाइयों के एक बड़े आचार्य से पूछा कि "तुम लोग पूर्वले जन्म ही नहीं मानते तो यह सृष्टि किसने रची है?" उसने कहा 'ईश्वर ने" अब प्रश्न होता है कि उसने एक को जन्म से ही लंगड़ा, लूला, अन्धा क्यों बनाया? और दूसरे को सुडौल, सर्वांग सुन्दर सुखी क्यों बनाया? अपनी मर्जी से बिना पुण्यपाप किये बनाया तो वह ईश्वर समदर्शी, पक्षपात रहित नहीं हो सकता। परमेश्वर सबको दुःखी सुखी बनाता तो सब वेदों में और शास्त्रों में और महात्माओं ने एक स्वर से यह कहा है कि परोपकार करो, दुखियों के दुःख दूर करो, अन्धों को आखें दो, रोगियों के रोग दूर करो, कंगालों को धन दो और भूखों को भोजन। जो राजा किसी अपराधी को कारागार में डालदे जैसे उसके मुक्त करने वाले को दण्ड मिलता है इसी प्रकार से यह सुखी दुखी परमेश्वर ने बनाये होते तो इनके विरुद्ध कर्म करने वालों को परमेश्वर दण्ड देता पर ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनको स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध है कि दुःखी सुखी जो सन्तान उत्पन्न होती है वह माता पिता के कर्म से होती है। वेद में कहा है कि माता पिता गर्भाधान से पूर्व अमुक अमुक कर्म और भोजन कर और पीछे संकल्प करें कि हम एक शूरवीर और भक्त सन्तान को उत्पन्न करें। रामचन्द्र जी की

माता जब वह गर्भ में थे तो अग्निहोत्र करती थी और पश्चात् परमेश्वर से प्रार्थना करती थी कि हे परमेश्वर ! हमारे गर्भ से स्वयं अवतार लो और भारतवर्ष को और सब दीन, दुःखियों को सुखदो और अत्याचारियों से मुक्त करो। सुख और शान्ति प्रेम; भक्ति सबके साथ में समान बर्ताव करो।" अभिप्राय यह है कि उनके माता पिता के संकल्पों का ही फल था जिससे रामावतार हुवे। ऐसे ही देवकी और वसुदेव चाहते रहते थे कि हमारे गर्भ से भगवान् अवतार लें और सारे संसार के लिये मुक्ति का द्वार खोलदें। ठीक वैसा ही हुवा। उनका उपदेश गीता में सबके लिये समान है। एक ऋषि जब उनकी पत्नि के गर्भ रहा तबसे वह उनको देव वाणी, वेदके मन्त्र और शास्त्रार्थ करने की कथा सुनाया करते थे। तो उनके जो पुत्र थे वह गर्भ में स्थित ही अपने पिता के उच्चारण की अशुद्धि बतलाने लगगये। उन्होंने क्रोध करके लात मारी जिससे लड़का आठ जगह से टेढ़ा पैदा हुवा। उसका नाम अष्टावक्र था। वह बड़ा महात्मा, पण्डित और ज्ञानी हुवा है। एक समय वह राजा जनक की सभा में गया। उसको ऐसा कुरूप और टेढ़ा मेढ़ा देखकर जनक सहित पण्डितों की सारी सभा हंस पड़ी। उनको देखकर आप भी बड़े खिल खिला कर हंसे। उनको हंसता हुवा देखकर राजा जनक व पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुवा और हंसने का कारण पूछा। अष्टावक्र ने कहा कि मैंने सुना था जनक और उसके सभासद विद्वानों की परीक्षा करते हैं और बड़े ज्ञानवान् हैं परन्तु यहां तो मैंने देखा कि कसाई और चमार हैं। क्योंकि कसाई हड्डियों की परीक्षा करता है और चमार चमड़े की यह सुनकर सब बड़े लज्जित हुवे, उनको प्रणाम किया और उत्तम आसन दिया। यह सब आदर पिता के उस कर्म का फल है जो वह ज्ञान की कथा सुनाया करते थे। और उनको देखकर हंसना आदि निरादर पिता के पदाघात रूपी कर्म का फल है वह ऐसा ज्ञानवान् और कुरूप न तो भगवान् ने ही बनाया और न उसके पहले जन्मों के कर्मों का ही फल था। ऐसे ही माता के कर्मों का फल सन्तान को और सन्तान के कर्मों का फल माता पिता को भोगना पड़ता है। उपनिषदों में कहा है कि मनुष्य चाहे जैसी सन्तान पैदा कर सकता है। लिखा है कि बहुत पण्डित और अच्छा पुत्र उत्पन्न करना हो तो खीर और चावल घी मिला कर खाय तो ऐसा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ होवें। ऐतरेय उपनिषद् में लिखा है पिता जो अन्न और जल आदि का आहार करता है उससे वीर्य उत्पन्न होता है। जीव का वीर्य रूप से पिता के शरीर में स्थित होना प्रथम जन्म है। जब वह गर्भाधान द्वारा स्त्री के शरीर में अंगभूत हो करके स्थिति करता है यह जीवका दूसरा जन्म है। गर्भ से उसका जो बाहर आना है वह तीसरा जन्म कहाता है। यह बहुत से जन्मों का कहना और गर्भवास में और मरण में जीव को दुःख का कथन है वह वैराग्य के वास्ते है। पिता से सन्तान की आकृति आती है। अब भी सूक्ष्म वीक्षण के द्वारा वीर्य को देखा गया है तो पुरुष के शरीर की सारी शकल विद्यमान थी। जब वह स्त्री के गर्भ में होता है तो स्त्री के खाने पीने का जो रस बनता है उससे और जो उसका खून ठहरता है उससे उसका शरीर बनता है। कई पुस्तों तक आदमी पहचाना जाता है कि यह अमुक का पुत्र, पौत्र व प्रपुत्र है। किसी की शकल सूरत उसकी माता पर और किसी की निगाह और ध्यान से और पर भी जाती है। गर्भवती एक गोरी स्त्री के कमरे में एक हबशी की तस्वीर थी जिसे वह

बार बार देखती और चिन्तन करती रहती थी। जब उसके बालक जन्मा तो वह हबशी के रूप का था। उसको देखकर अंग्रेजों ने बड़ा आश्चर्य किया और हिन्दुओं में निगाह और चिन्तन करने से शकल सूरत बदल जाती है इस उसूल को सच जाना। ऐसे ही उग्रसैन की रानी की राक्षस पर निगाह पड़ने से कंस हुवा। इस वास्ते गर्भावस्था में स्त्री की बड़ी रक्षा करनी चाहिये। वह अपनी पति की मूर्ति का ध्यान करे देखे, या अपनी तस्वीर को दर्पण में देखे, राम कृष्णादि अवतारों की, देवताओं की, ऋषिमुनि महात्माओं की मूर्तियों का ध्यान करे। उनके जीवन चरित्रों की कथा सुने, खीर, चावल, दूध, फल, ब्रह्मी, वंशलोचन, ज्योतिष मति, गिलोय, गाय का घी और शहद इत्यादि का सेवन करे। कभी किसी प्रकार का शोक क्रोध और दुःख पति को चाहिये उसे न होने दे। खोटी नीच स्त्री से बात चीत नहीं करने दे। एकान्त अच्छे स्थान में रक्खे। बनों में, जंगलों में, बागों, में फूलों में, साधु महात्माओं के दर्शनों को उसे ले जाय और उसकी जो इच्छा हो उसे पूरी करे। कर्ज लेना बुरा है परन्तु गर्भावस्था में कर्ज लेकर भी अच्छी वस्तु खिलावे और अच्छे मकान में रक्खे तो लड़का अवश्य ज्ञानवान, धैर्यवान् और पराक्रमी हो गर्भ के अन्दर जब अभिमन्यु था तो कृष्ण भगवान् ने उसकी माता को चक्र व्यूह तोड़ने की कथा सुनाई थी। वह अभिमन्यु को सोलह वर्ष की आयु में ज्यों की त्यों याद रही। ऐसे ही आल्हा, ऊदल व बोनापार्ट जब यह अपनी माताओं के गर्भ में थे उस समय इनकी माताएं लड़ाइयों में सिपाहियों को पानी पिलाती थी। और युद्ध का दृश्य देखती थी और सुनती थी। इनके लड़कों ने पैदा होकर जबसे सुरत संभारी तबसे मरण पर्यन्त लड़ते ही रहे। गर्भ के समय माता जो कुछ खायगी, देखेगी, सुनेगी और खयाल करेगी वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। इसलिये माता पिता को चाहिये कि वह सन्तान के लिये अच्छा काम करे जिससे वे सुख पावें। सन्तान के सुख दुःख और पाप पुण्य का उत्तर-दायी माता पिता हैं। परमात्मा किसी को दुःखी, दीन, कंगाल, अंगहीन, पराधीन नहीं बनाता है। वह तो इनसे छूटने और छुटाने का उपदेश करता है, इन सबसे असंग है। और जो यह कहा जाता है कि "हारे के हरि नाम" जब चन्देरी का राजा शिशुपाल कृष्ण से लड़ाई में हार गया उस दुःख से दुःखी होकर अग्नि में जलने लगा तो उससे मगध के राजा जरा सिन्धु ने उसको जलने से रोका और कहा:-

यथा दारुमयि योषित नृत्यते कुहकेच्छया।

वनोवास में रामने कहा था:-

नामनः काम कारोऽहि पुरुषोऽयमनीश्वरः।

किसी की अपनी मर्जी नहीं चलती यह पुरुष अनीश्वर है।

"ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"।

जब मनुष्य का पुरुषार्थ और बुद्धि कोई काम नहीं देते उस समय परमात्मा की शरण में आना पड़ता है और उसी को कर्ता, धर्ता, धाता, विधाता, मानना पड़ता है।

करण करावन आपहीआप, मानुष के नाहीं कछु हाथ॥

यह भक्ति प्रेम की महिमा है। जैसे नाना प्रकार के जन्मों को धारण करना, जन्म मरण और गर्भ के दुःखों को वर्णन करना वैराग्य के वास्ते है ऐसे ही ऐसे शब्द भक्ति की महिमा और सन्तोष के लिये है। अब रही पुण्ययोनि और पापयोनि,

कंगाल और भागवान्, राजा और रंक, नीच और ऊंच। सो यह भी परमेश्वर ने नहीं बनाये और न बनाता है। यह मनुष्यों की व्यवस्था करने वाली समाज के दोष और गुण से है। ब्राह्मण, भंगी, राजा रंक यह सब यहां की बुरी व्यवस्था के फल हैं। परमेश्वर ने सबको एक जैसा पैदा किया है। इसलिये परमेश्वर तो कल्याण और मोक्ष और जब मनुष्य का कोई साथी नहीं होता है तब उसका साथी और सहायता करने वाला है। वह हमारा सबका एक तरह का आत्मा है। हमारा उसके साथ ऐसा ही घनिष्ट सम्बन्ध है जैसा तरंग, झाग और बुद्बुद् का समुद्र या पानी से। हमें परमात्मा पर पूरा भरोसा और विश्वास रखना चाहिये। जो कोई बात नहीं होती है तो अपने विश्वास की कमी के कारण ही नहीं होती है। एक महात्मा ने कहा है "यदि तुममें राई भर भी विश्वास हो तो तुम्हारी आज्ञा से पर्वत डोलने लगजांय" इसी तरह से यह जो बड़े २ महात्मा और भक्त हुये हैं उनका परमात्मा में अटल विश्वास था। यह निश्चय रखना चाहिये कि जो अपनी मर्ज़ी के विरुद्ध काम हुवा है वह परमात्मा का किया हुवा और अपने बहुत भले के लिये है। परमेश्वर सदैव अपना भला ही करता है।

"यद्विधात्रा विधीयते तच्छुभाय भवति"।

जो परमात्मा करता है वह भले के ही लिये होता है एक राजा के वज़ीर का ऐसा ही निश्चय था। राजा की एक समय अंगुली कट गई तो सब सभासदों ने शोक और दुःख प्रकट किया कि महाराज की अंगुली कट गई यह बहुत बुरा हुवा। उस वज़ीर ने कहा कि "यद्विधात्रा विधीयते तदेव शुभाय भवति।" जो कुछ परमेश्वर करते हैं वह भले ही के लिये होता है। इस शब्द को सुन कर राजा बहुत नाराज़ हुवा और गुप्त रूप से उसको मारने की ठानी। जब एक दिन वे शिकार को गये तो राजा वज़ीर को लेकर और सब नौकर चाकरों को छोड़ दूर घने जंगल में चले गये। वहां उनको प्यास लगी। राजाने वज़ीर को कूवे से पानी खैंचने की आज्ञा दी। उसने पानी पिलाया जब दुबारा लोटा फांसा तो उसको कूवे में धकेल दिया। राजा वहां से चलदिया, दिन छुप चुका था वह रास्ता भूलगया और वन आदमियों के गांव के पास एक बड़ के पेड़ से घोड़ा बांधकर विश्राम करने की बात सोचने लगा। उसी समय ढोल बजाते हुवे कुछ आदमी आये और राजा को पकड़ लिया। उनको देवता पर बलि चढाने के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी। जब राजा को बलि को चढाने लगे तब उनके पुरोहित ने कहा कि इसके कपड़े उतार कर अंग देखो कोई खण्डित तो नहीं है। देखातो अंगुली कटी हुई थी! तब पुरोहित ने कहा कि खण्डित अंग भंग की बलि देवता पर नहीं चढ़ती है और वह छोड़दिया। राजा ने सोचा और विचारा कि उस वज़ीर का मत बहुत ठीक था। मेरी अंगुली कटी तो जान बची नहीं तो यहां पर बचने का और कोई उपाय न था। तब वह उस कुवे के पास आय और मन्त्री को कूप से बाहर निकाल कर अपने अपराध की क्षमा कराते हुवे कहा कि भगवान् जो कुछ करते हैं भले के लिये होता है यह आपका मत बहुत ठीक था। मेरी अंगुली कटी तो जान बची। पर एक शंका है इसे भी निवारण करो। तुमको कूप में गिराने से तुम्हारा क्या भला हुवा। वज़ीर ने कहा श्री महाराज! हम दोनों साथ में होते तुमको तो अंगुली कटी देख कर छोड़ देते और मुझे बली चढादेते। कूप में, गिरने से मेरी भी जान बच गई।

माधव हरि हरि हरि मुख कहिये ॥
हमते कछु न होवे स्वामी, ज्यों राखे त्यों रहिये ॥
राम ज्यों राखे त्यों रहिये ॥
जो कछु करे भलो कर माने, कबहु बुरो ना कहिये ॥

एक राजा नास्तिक था। अपने पुरुषार्थ और बुद्धि पर ही भरोसा रखता था। जब जिहाज में बैठकर कहीं विदेश को जा रहा था तो सहसा रस्ते में तूफान आगया और जहाज डूबने लगा तब उसे कोई उपाय न दीखा तो घबड़ाकर और बिल बिलाकर दीनता से प्रार्थना करने लगा कि हे परमेश्वर! किसी तरह बचा। वजीर ने राजा का हाथ पकड़ कर कहा आपतो परमेश्वर को नहीं मानते थे। राजा ने कहा कि भाई आखिर मानना ही पड़ता है। इसलिये परमेश्वर को मानना उसपर विश्वास रखना, उनके गुणों का कीर्तन करना, नाम जपना और दूसरे से जपाना यह मनुष्य का सबसे बड़ा कर्म है, इससे जीव दुःखों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

हज़रत साहब ने कहा है परमेश्वर का विश्वास करो पर ऊंट के पांव बान्ध कर रक्खो।

यत्ने कृतेयदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः।

अतएव भरसक प्रयत्न करना चाहिये जिससे परमात्मा प्राप्त हों। परमेश्वर सुखसे, दुःख से, संकल्पों से, बुद्धि से, सबसे परे शान्त, निर्विकार, निरंजन, निराकार, ज्योति स्वरूप है। वैसा ही हमें होना चाहिये। लोग कहते हैं परमात्मा पुण्य कर्मों के करने से प्रसन्न होता है और पाप करने से अप्रसन्न होता है। इसको जाने उसको जाने, स्तुति करने से राजी अमुक से नाराजी इत्यादि बातें जीवों को होती हैं, परमात्मा तो इन्होंसे रहित है। जीव बड़े से बड़ा सुख और शान्ति का पद चाह सकता है। उससे भी बढ़कर परमात्मा है। उसमें बड़ी से बड़ी प्रेम कि किरणें आनन्द और शान्ती की लहरें अपने सुनहरे रूप में और आनन्द और प्यार के रूप में जब जीवको स्पर्श करने लग जाती हैं तो वह कृतकृत्य हो जाता है। मानो उसका मित्र अपने हाथों से अपनी ओर बुलाता रहता है। बड़े से बड़ा आनन्द, प्रेम, सौन्दर्यता, मिठास, मधुरता, पवित्रता, उत्तमता, सबकी सब अपने से बढ़ कर सुख, शान्ति, प्रेम, पवित्रता आदि अपने ओत कारण को दिखाते हैं। परमात्मा प्रेम स्वरूप है, ज्ञान व प्रकाश स्वरूप है, पुण्य स्वरूप है, सुख स्वरूप है।

यद्दि ज्ञानेन पश्यन्ति धीराः,
आनन्द रूपं अमृतं यद्विभाति।

जो विज्ञान अपने अनुभव से देखता है वह आनन्द अजर अमर, मोक्षरूप जो प्रकाश करता है जो बाहर भीतर आकाश की भान्ति छाया हुआ है। उसी को पूजो, प्रणाम करो और उसी का लाख २ धन्यवाद करो जिसने हमको भक्ति करने का अवसर दिया है।

"प्रिय पुत्रात्प्रिय वित्तात्प्रिय सर्वस्मात्"।

उसको पुत्र से भी बढ़कर प्यार करो धन से स्त्री से सबसे बढ़ चढ़के प्यार अपने आत्मा परमात्मा से करो। उससे किसी प्रकार की भी प्रार्थना करोगे वह अवश्य तुम्हारी पूर्ण करेगा। उसके कभी कभी देर तो है पर अन्धेर नहीं है। जो सब कुछ परमात्मा ही को मानता है और चाहता वह वही हो जाता है। सब जगत् उसी से उत्पन्न हुवा है, उसी में चेष्टा करता है, और अन्त में उसी में लय हो जाता है। इसलिये यह जो सब कुछ प्रतीत होता है वह परमात्मा ही है। मनुष्य का यदि यह विश्वास हो जाय कि मैं मरकर परमात्मा को ही प्राप्त होंगा तो वह प्राप्त हो जाता है और हम

किसी प्रकार की रुकावट नहीं करते।

'जातेव न जायते कोन्वेनं जनयेत पुनः विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'

जिस मरने से जग डरे, मोर बड़ो आनन्द।
कब मरहूं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द ॥ (कबीर)

इस वास्ते सब मनुष्य को जाति पाति, छुवा छूत तथा ऊंच नीच का विचार छोड़कर एक गायत्री मन्त्र विश्वास: व श्रद्धा भक्ति के साथ जपना चाहिये। यह मन्त्र बहुत छोटा सा है परन्तु इसका अर्थ बहुत बड़ा है। यों तो ओंकार के अर्थ में ही ज्ञान और विज्ञान सब आजाता है अकार, उकार, मकार और मात्रा में सारे नाम और उनके जपने का फल मिलता है। व्याहृति, गायत्री और ओं इनका उपनिषदों में महात्म्य और अर्थ स्मृतियों में याज्ञवल्क्यादिकों ने विस्तार पूर्वक कहा है। कितनी ही गायत्री पर स्वतन्त्र पुस्तकें हैं। गायत्री व्याख्या, गायत्री तन्त्र, गायत्री मीमांसा, गायत्री पटल इत्यादि। हिन्दु जाति में आजकल संगठन की बड़ी आवश्यकता है। जिस जाति का एक मन्त्र नहीं होता है उस का संगठन होना भी असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। पूर्वोक्त कथन के अनुसार सब मनुष्य परमात्मा के लिये एक हैं। इसलिये भगवान् ने कहा है:-

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"।
"समानो मन्त्रः समिति समानि" ॥

मनुष्य पांच वर्ष के पश्चात् जबसे वह सुरत संभालता है मरण पर्यन्त जो जो काम, संकल्प और स्मरण करता है वैसा ही मर करके होता है। जो यहां करता है, सुनता है वही स्वप्न में देखता है। इस जीवात्मा के पांच शरीर हैं। पहला स्थूल शरीर है जिसमें कि पार्थिव तत्व विशेष है और तत्व गौण रीति हैं। यह पृथिवी का बुलबुला है। वेद में कहा है:-

"भस्मान्तं शरीरम्"

यह शरीर अन्त में पृथिवी ही में मिलजाता है। इसके सहित चैतन्य को वा आत्मा को विश्व नाम से कहा है। इसका सम्बन्ध वैश्वानर विष्णु विराट से है। इसका स्थूल शरीर यह सारा जगत् है 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" इनके आत्मा और शरीर की समष्टि व्यष्टि रूप से एकता है। दूसरा सूक्ष्म शरीर है जिस के द्वारा स्वप्न देखता है। उस आत्मा को तैजस कहते हैं। उसका सम्बन्ध ब्रह्मा से है। वेद में कहा है:-

"यदिदं मनः स ब्रह्मा"

जो यह मन है वही ब्रह्मा है इसका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से विस्तृत और शक्तिशाली है। सिद्धि, करामात, विशेष शक्ति स्वल्पसी इच्छा से सब कुछ सिद्ध करदेता है। इसका रंग रूप उपनिषदों में धूसरो ऊन, हल्दी, इन्द्र गोपा और पट वोजना की चमक के समान है। तीसरा कारण शरीर है और उसका अभिमानी आत्मा प्राज्ञ है। उसकी एकता ईश्वर के साथ में है। यह तीन प्रकार के चैतन्य आत्मा और उनके शरीर मायिक हैं। इस कारण शरीर में जीवात्मा को दोनों प्रकार का ज्ञान नहीं रहता। न यह संसार है न यह बाहर जो कुछ है यह और न मैं हूं, मैं हूं का ज्ञान रहता है। वहां केवल अज्ञान और आनन्द का अनुभव करता है। जाग करके कहता है "मैं बड़े आनन्द से सोया कि मुझे कुछ सुधि न रही" जैसे स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथिवी से बतलाया ऐसे ही सूक्ष्म का वायु के साथ है और कारण का आकाश के साथ है। वह आकाश का बुलबुला है। चौथे महाकारण का महतत्व से और अव्यक्त का और तुर्य शरीर का ऐसा ही सम्बन्ध है। और पांचवां तुर्यातीतत केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। स्थूल शरीर को छोड़कर

जीव सूक्ष्म शरीर को अविद्या से ग्रहण कर लेता है। उसमें स्थूल शरीर से कहीं बढ चढ कर शक्ति है। जैसे सरकण्डे की गांठ तोड़ने से सूक्ष्म धोर निकलता है और फिर उसमें से तुली निकलती है। ऐसे ही जीव के शरीर रूपी खोल सूक्ष्म से सूक्ष्म, नवतर से नवतर, कल्याणतर से कल्याणतर और पश्चात् तुली रूपी शुद्ध चैतन्य स्वरूप प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मरता है तब उसके नाड़ी नस सब ढीले पड़ जाते हैं और जैसे गूलर पक करके गिर जाता है वैसे ही यह स्थूल शरीर गिर जाता है और सूक्ष्म शरीर को लेकर जीव निकल जाता है। मरने से पहले मनुष्य में मरणे के कुछ चिह्न प्रकट भी हो जाते हैं।

अपूर्ण

कर्म मीमांसा

[ले०-श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

एक ही कर्म चार प्रकार के फल देता है जैसे १ पाप २ महापाप ३ पुण्य ४ साधारण। जैसे किसी मनुष्य ने किसी को जल में डूबते देखा और यह भी देखा कि इसके पास धन है। सो यदि वह उसको धन के लिये निकालता है और उसका धन लेकर मारदेता है तो महापाप है, यदि धन लेकर छोड़ देता है तो पाप है, यदि बड़ाई के लिये निकाल देता है। तो साधारण कर्म है उसका न पाप है न पुण्य है और यदि अपना कर्त्तव्य समझ कर निकालता है तो पुण्य है। इसी प्रकार पाप व पुण्य मनुष्य की नियत से सम्बन्ध रखते हैं।

प्र०-यदि कोई मनुष्य किसी रोगी पशु आदि को (जिसके बचने की आशा नहीं है) मार देता है जैसे किसी ने बीमार पशु मरवा दिया तो उसको उस कर्म का फल मिलता है या नहीं ? उ०-उसका वह कर्म बुरा नहीं किन्तु अज्ञानता का है। यदि अपनी माता या पिता आदि सख्त बीमार हों और उनके बचने की आशा न भी हो तो क्या उनको जहर देकर या और किसी प्रकार मार दिया जाय तो इसको कोई अच्छा नहीं कहेगा अपितु अज्ञानता ही कहलायेगी। क्या मालुम है कि उसके कोई कर्म हों जिनका वह फल इस अवस्था में भोग रहा हो और उसके प्राण छुटा देने पर उस फल के भोगने को उसे फिर जन्म ग्रहण करना पड़े और विशेष काल लगे, और संभव है वह और जी जाये, अतः ऐसे कर्म अज्ञान के कहलाते हैं। इनका पश्चात्ताप करने से, गायत्री जपने से तीर्थ यात्रा से, उपवास से प्रायश्चित्त हो जाता है।

प्र०-तीर्थ यात्रादि में और भी बहुत से कर्म अज्ञान से बन जाते हैं उनका फिर क्या और प्रायश्चित्त करना होगा ?

उ०-नहीं तीर्थ यात्रादि काल में होने वाले कर्मों का तो तीर्थ यात्रा से ही प्रायश्चित होजाता है और करने की आवश्यकता नहीं।

प्र०-सिंहादि पशु जो हिंसादि करते हैं इनका भी फल इनको भोगना पड़ेगा या नहीं ?

उ०-नहीं, पशुओं को पाप पुण्य नहीं लगता पाप पुण्य तो मनुष्य को ही लगते हैं क्योंकि वह

समझता है, पशुओं को ज्ञान नहीं होता है।

ईश्वर के विषय में लोगों के भिन्न २ विचार हैं। हमने देहली में एक विद्वान पादरी से पूछा कि लोगों के छोटे बड़े, अमीर गरीब, सुखी दुखी होने में तुम क्या कारण मानते हो। पादरी ने कहा ठीक कुछ मालूम नहीं, किन्तु ईश्वर के ही बनाये हुये इस भेद को प्राप्त होते हैं। हमने कहा यह ठीक नहीं यदि ईश्वर ऐसा करे तो अन्यायी और पक्षपाती ठहरता है, दूसरे फिर ईश्वर ने सब ठीक २ बनाये हैं फिर तुम दुःखियों पर रहम क्यों करते हो ईसा ने बहुत से अन्धों को चश्मे के जल से सूझता किया तो जो राजा के कानून को तोड़ता है वह दोषी है, इसलिये जो गरीबों के सहायक हैं वे दोषी ठहरेंगे। किन्तु है नहीं ऐसा। इससे सिद्ध है कि ईश्वर किसी को सुखी दुखी अमीर गरीब लंगड़ा लूला नहीं बनाता, यह सब माता पिता के कर्मों का फल है संस्कारों को न करने से, तथा गर्भकी अवस्था में भोगादि करने से ही ऐसी व्यवस्था बनती है। माता व पिता के अच्छे व बुरे कर्म सब पुत्र पर फलते हैं। यदि माता को गर्भावस्था में दुःख दिया जाय क्रोधित किया जायगा तो पुत्र भी वैसा चिड़चिड़ा स्वभाव का होगा। यदि माता विदुषी हो और बुद्धि वर्धक ब्रह्मी, वंशलोचन आदि औषध गर्भ की दशा में खावे तो पुत्र भी बुद्धिमान व तेज दिमाग का पैदा होगा। अष्टावक्र का पिता विद्वान था अपनी स्त्री को शास्त्र चर्चा सुनाता रहता था। जब पुत्र ने उनकी गलती पकड़ ली तो क्रोध में आकर लातमारी तो आठ जगह से वक्र पैदा हुआ। जब वह जनक की सभा में गया तो सब हंस पड़े, तब अष्टावक्र भी हंस पड़े। लोगों ने पूछा हम तो आपकी सकल पर हंसे थे किन्तु आपने क्यों हंसे। उन्होंने कहा कि मैंने सुना था कि जनक की सभा में ब्रह्म विद्या के ज्ञाता विद्वान हैं किन्तु मैंने यहां चमार देखे। फिर जनक ने उठ कर अपने आसन पर उन्हें बिठाया और बड़ा सत्कार किया। यहां जो उसका अपमान हुवा वह तो पिता की लात का फल हुवा और आदर उसके पढ़ाने का फल हुवा। दोनों कर्मों का फल पुत्र को भोगना पड़ा। इसी प्रकार एक मौलवी से पूछा तो उसने कहा। खुदा ने दो लाइनें बनाई हैं एक अच्छी दूसरी बुरी। हमने कहा यह तुम्हारा खयाल गलत है। यह सब तुम्हारे किये हुये का फल है। ईश्वर निर्लेप व शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। वह किसी को सुखी दुःखी नहीं बनाता। प्र०-मरकर मनुष्य क्या बनेगा नीचे जायगा या ऊपर। उ०-यदि पुण्य अधिक होंगे तो ऊपर जायगा बराबर होंगे तो मनुष्य बनेगा, पाप अधिक होंगे तो नीचे जायगा। "पुण्येन पुण्यं लोकं, पापेन पापलोकम्, उभाभ्यां मनुष्य लोकम्"। मांस खाना चाहिये या नहीं, शास्त्र की क्या आज्ञा है। उ०-शास्त्र में देश काल के अनुसार सारी बातों का वर्णन है। उपनिषदों में भी मास खाने की बात लिखी है। कि जो चाहे कि मेरा ऐसा पुत्र हो तो बैल का मांस ओदन आदि खावे। आज यदि किसी को बैल का मांस खाने को कहा जाय तो कितना बुरा है। पहले अतिथी के आने पर गौ मांस पकाते थे उसका नाम 'गोघ्नोऽतिथि' ऐसा लिखा है। फिर गो अर्थ इन्द्रियां करलिया। ऐसे महाभारत में युधिष्टर ने सब ऋषियों को मांस खुलाय किन्तु अब जब कि घी दूध खूब मिलते हैं तो मांस की जरूरत नहीं है।

प्रार्थना

हे ज्योति स्वरूप ! ब्रह्माण्ड के नायक, दीनानाथ ! तुम अनन्त दयालु, कृपालु, सर्वशक्तिमान, दीनोद्धारक, पतित पावन, भक्त वत्सल, निरंजन शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, सारे विश्व के ऊपर विराजमान, सकल विश्व के आत्मा हो। हम तुम्हारी ही सपर्या और पूजा करें। हम तुम्हारी सृष्टि रचना को कभी बुरा न कहें। तुम्हारा ही रूप चिन्तन करते हुये नमस्कार और पूजा करें यह भी तुम्हारी ही सपर्या और पूजा है। हम सब पवित्र मन होकर न बदलने वाली एकता स्थापित करें समता भाव से परस्पर व्यवहार करें हिन्दू, (सिक्ख) मुसलमान, ईसाई, बुद्धादिक सब मिलकर एक तुमसे प्रार्थना करें कि विश्व में सुख और शान्ति का राज्य हो। हम एका करके दीन दुःखियों का दुःख दूर करें। कंगालों को धन दें। धर्मात्माओं की सहायता करें। हम सबको बराबर की दृष्टि से देखें। यह और है मैं और हूं यह भाव न रहै। हम तुम्हारे पुत्र होने से सब भाई भाई हैं।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

परस्पर हम सब भाई बहनों से द्वेष का भाव मिटजाय। हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। परस्पर मधुर और कल्याण कारी वाणी में बात चीत करें। हे परमेश्वर ! हमको आत्मिक बल, मानसिक बल और शारीरिक बलदो जिससे हम तुम्हारे दृढ विश्वासी हो जावें। और हम सब सच्चे मार्ग पर चलते हुवे अन्त में तुम्हारे स्वरूप को प्राप्त होजावें। हम सबकी सेवा करें और सबके साथ उदार भावों से वर्तें। मजहबों की कट्टरता और हठ धर्मी हममें न रहे और हम सबको अपना जैसा प्यार करें। जिसको तुम सच्चामार्ग जानते हो उसी मार्ग से हमें चलाओ। जो तुम्हारी मर्जी हो वह पूरी हो। हमारे दिल और आंखें खुली हों। उनपर तुम्हारा पूर्णतया अधिकार हो। हम तुम्हारे लिये हैं। हमको पवित्र, निश्चयात्मिका बुद्धि दो, अपना विश्वास दो, अपना प्रेम दो। हम तुम्हारे ही दान से जीते हैं। हमारे सब कार्यों की सिद्धि तुम्हारी अनुकूलता पर निर्भर है। इसलिये हे परमेश्वर ! तुम हमारे सदैव अनुकूल रहो। जैसे तुम्हारे भक्त वा स्वरूप राम, कृष्ण, अर्हन्त, बुद्ध, ईसा, मूसा, मोहम्मद, नानक, कबीर, मीराबाई जो स्त्री पुरुष तुम्हारी भक्ति का, पूजा का, तुम्हारे उदार भावों का तुम्हारी आज्ञा का प्रचार करते रहे हैं वैसा हम भी करें। और तुम्हारे भक्तों को और तुमको हम एक ध्यान से देखें। यही हमको उदारता और ज्ञानकी भिक्षा दे। हम से सबका भला हो, सबमें संगठन और एका हो। जगह जगह पर सब इकट्ठे होकर अपने दुःखों से छूटने का उपाय सोचें, तुम्हारे गुणों का चिन्तन करें, अपनी त्रुटियों को दूर होने के लिये तुमही से प्रार्थना करें। जैसे समुद्र अपनी तरंगों, झाग बुद्बुदाओं से और बुदबुदा आदिक समुद्र से भिन्न नहीं है। तुम हमारे ही आत्मा हो। सब विश्व में शान्ति और आनन्द छाया हुवा हो। समय पर वर्षा हो, पृथिवी प्रभूत फलफूल, दुग्ध, अन्न देने वाली हो। हम सब परोपकार में रत रहें, और तुमको कभी न भूलें। ओं ओं ज्योतिस्वरूप, अखण्ड, निराकार, निर्विकार, निरंजन, दुखभञ्जन, निराधार और सर्वाधार की जय हो। फिर प्रेम से बोलो निराकार ज्योति की

जय हो। हमारे रोम रोम से और रक्त के करण कण से आपको नमस्कार हो। लाखों बार धन्यवादों पर धन्यवाद हो और आपका हम को आशीर्वाद हो कि हम दुखों से और उसके कारण जन्म मरण से हमेशा के लिये मुक्त होजांय। ओं शान्ति स्फुर्ति आनन्द प्रेम और सुनहरी प्रकाश की सबके ऊपर वर्षा हो।

॥ बोलो अखण्ड ज्योति की जय ॥

भजन

१

नैनन में पिचकारी दई, मोय गारी दई,
मोसे होरी खेली न जाय ॥ टेक ॥
क्यों रे लंगर लंगराई मोसे कीनी।
केसर घोर कपोलन दीनी।
लिये गुलाल ठाडो मन मुस्काय ॥१॥
औचक आन कुंकुमा मारे,
रंग सुरंग शीश तें डारे।
यह ऊधम सुन सास रिसाय ॥२॥
नेकन कान करत काऊ की,
नजर चुकावत बलदाऊ की।
अंग लिपट हंस हाहा खाय ॥ ३ ॥
होरी के दिनन मोते दूनो अकरे,
सालगराम कौन आय पकरे।
पनघट ते घर लौं बतराय ॥ ४ ॥

२

अचक आन उंगरी पकरी,
नैंने कैसे करी ॥ टेक ॥
उंगरी पकर मेरयो पोंहचो पकरयो,
कित मैं जाऊं गिरारो सकरो।
लिपटन की लागी धकरी ॥१॥
बतियन कीच दई केसर की,
लागत गूंज खुली बेसर की।
मोतियन माल भलो बिखरी ॥ ३ ॥
सालगराम देखत बारो,
कृष्ण कन्हैया बंशी बारो।
अन्तस को कारो सगरी ॥ ३ ॥

ी सबके ऊपर

जय ॥

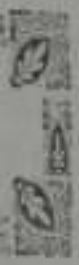

ी,
करी ॥ टेक ॥
करयो,
रो सकरो।
करी ॥१॥
की,
ी बेसर की।
खरी ॥ २ ॥
रो,
बंशी धारी।
री ॥ ३ ॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य ॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	" ।-)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्	।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	" -)॥
६.	ज्ञानधर्मोपदेश	" -)।॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	" =)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	" ≡)
९.	सत्य शब्द संग्रह	" ॥≈)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	" -)।॥
११.	शब्द सार संग्रह	" -)।
१२.	शब्दसंग्रह	" -)॥
१३.	सारसंग्रह	" ।)
१४.	भाषा पत्रिकका प्रकाश	" ।=)
१५.	मनुस्मृति सार	" ≡)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	" ।≡)
१७.	भगवद्भक्तांक	" ॥≈)
१८.	भगवदंक	" ॥।)
१९.	गवांक	" १।)
२०.	महात्मांक	" १)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें ।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।